हम हैं गाय की जात

विद्युल्लेखा अकलूजकर

अगर विद्यार्थियों को सोचने की, अभिव्यक्त करने की छूट दी जाए और उन्हें धीरे–धीरे इसकी आदत पड़ जाए तो कल्पनाओं का आकाश कितना विस्तृत हो सकता है। कनाडा में कॉलेज में लड़के–लड़कियों को हिन्दी पढ़ाते हुए लेखिका के अनुभवों में इसकी एक झलक दिखाई देती है।

हमारी भाषा और हमारी ज़िंदगी का कितना करीबी रिश्ता है, यह पूरी तरह दिखा पाना तो कठिन है, लेकिन मुझ जैसी पढ़ाने वाली को तो हर दिन नए किस्म के अनुभव मिलते रहते हैं। एक साधारण-सा निबंध लिखने जैसी बात को ही लेते हैं। भाषा की पढ़ाई करने वाले विद्यार्थी

निबंध में क्या लिखते हैं उस पर से उनकी भाषा यानी शब्द भंडार, वाक्यों की संरचना, व्याकरण वगैरह का अंदाज़ तो लगा ही सकते हैं; उनकी ज़िंदगी में किस चीज़ का कितना महत्व है यह भी समझ में आ जाता है। हाल ही में मैं इस सच्चाई से वाकिफ हो सकी हूं। विषय था गाय-बैल और मेरे विद्यार्थी थे कनाडा के निवासी, लेकिन इस 21वीं सदी में भी हिन्दी सीखने के इच्छुक। परन्तु इस अनुभव को बताने से पहले गाय-बैल के बाबत मेरे कुछ निजी अनुभव बताना भी मैं ज़रूरी समझती हूं और इसके लिए हमें थोड़ा इतिहास-भूगोल भी छूना पड़ेगा।

मेरे बचपन की गाय

बचपन से ही गाय से मेरे मधुर संबंध रहे हैं। मैं पुणे के केन्टोनमेंट इलाके में रहती थी जहां सड़क चलते काली, सफेद या तांबई रंग की गाय सुस्ताते हुए दिख जाती थी। इन आराम फरमाती गायों को देखकर उनके सींग से डर का अहसास होने से पहले उनकी बड़ी-बड़ी आंखों में दीनता, उनका हृष्ट-पुष्ट बदन, बैठी हुई गाय के मुड़े हुए पांव, पुष्ट थन..... वगैरह का एक चित्र दिमाग में कौंध जाता था; और सुस्ता रहे गाय-बैलों के चित्र बनाने की कोशिश भी मैं करती थी। कोई भी विषय मुझे चित्रों के मार्फत ज़्यादा अच्छी तरह समझ में आता था और इसीलिए मैं अब पढ़ाते वक्त भी जितना ज़्यादा संभव हो, चित्रों का इस्तेमाल करती हूं।

जब मैं थोड़ी और बड़ी हुई तो हमारे सैफी स्ट्रीट वाले मकान के बाहर एक गाय वक्त-बेवक्त आ खड़ी हो जाती थी। वो रंभाती नहीं थी लेकिन चलने पर उसके गले में बंधी घंटी बजती थी जिससे उसके आने की सूचना मिल जाती थी। फिर मैं उसे केले-तरबूज के छिलके खिलाने के लिए खुशी-खुशी आंगन तक जाती और दरवाज़े से सिर्फ कोहनी तक हाथ बाहर निकालकर गाय को ये सब छिलके खिलाती। जब गाय उन्हें अपना निचला जबड़ा हिला-हिलाकर खाती तो मैं अचरज से देखती रहती।

एक नियम-सा बन गया था कि जैसे ही गाय हमारे आंगन के सामने खड़ी होगी, हमारे पड़ोस के पारसी दादाजी का कुत्ता – मिकी, गाय पर ज़ोर-ज़ोर से भौंकना शुरू कर देगा। लेकिन गाय सारे छिलके आराम से चबा-चबाकर खाती रहती थी और वह मिकी की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देती थी। 'यदि हमारे काम से किसी दूसरे को किसी किस्म की परेशानी नहीं हो रही हो तो किसी के चीखने-चिल्लाने की वजह से अपना काम नहीं रोकना चाहिए', लगभग इसी भाव से गाय अपने काम में लगी रहती थी। काफी बाद में मुझे हिन्दी का एक मुहावरा पता चला जो हाथी

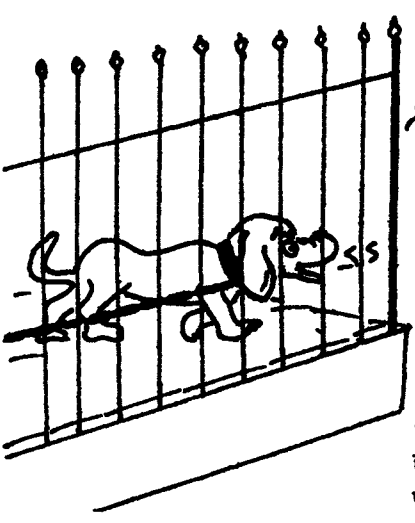

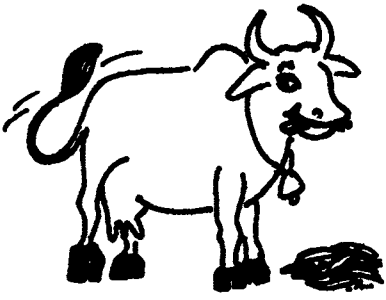

के बारे में था – हाथी चले अपनी चाल, कुत्ते भौंके हज़ार। पड़ोसी के कुत्ते मिकी का सींखचों के पीछे से भौंक-भौंककर गला सूख जाता था, बेसुरा हो जाता था, तब कहीं जाकर गाय पूंछ से अपने शरीर पर बैठी मक्खियों को उड़ाती हुई आगे के पड़ाव की ओर चल पड़ती। बंद दरवाज़े के पीछे से मिकी कितना भी भौंके कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाएगा, गाय को यह कहां से पता चला ये तो मालूम नहीं, लेकिन गाय भी होशियार होती है यह मुझे इसी से ही पता चला।

गाय की होशियारी का इस्तेमाल संभवतः मैंने निबंध लेखन में किया होगा ऐसा मुझे लगता है क्योंकि कक्षा में और बच्चों द्वारा लिखे निबंधों में अक्सर शिक्षिका द्वारा बताए वाक्य ही होते थे। जैसे गाय एक स्तनधारी प्राणी है। गाय के दो सींग और चार टांगें होती हैं ..... वगैरह। और सबसे आखिर में ..... इसलिए गाय मुझे पसंद है, इस वाक्य से निबंध का अंत होता था। लेकिन हमारे घर आने वाली गाय की वजह से मेरे निबंध में कुछ नयापन ज़रूर रहा होगा क्योंकि बहनजी ने मेरे लिखे निबंध को कक्षा में पढ़कर सुनाने के लिए कहा था ऐसा मुझे याद पड़ता है।

भारतीय समाज में गाय

भारत के पुणे जैसे शहर में पलते-बढ़ते हुए भी गाय, बछड़े, बैल वगैरह आसानी से दिखाई दे जाते थे। कॉलेज में पढ़ते समय सायकिल से आते-जाते हुए, अपने गाय-ढोरों को नदी पर ले जाते चरवाहे अक्सर दिखाई देते थे। भूसे में लिपटी हुई बर्फ की

सिल्लियों को ले जाती बैल गाड़ियां रास्ते में दिख जाती थीं। बैलपोळा, वसुबारस जैसे त्यौहारों के बारे में तो मालूम ही था। गौरक्षा करने वाले लोग भी अक्सर गायों के लिए चंदा इकट्ठा करने घूमते थे। गली-मौहल्लों में सजे-धजे बैलों को लेकर अक्सर बैलवाला आता था, और एक खास किस्म का बाजा बजाता था जिससे पता चल जाए कि वो आ गया है।

धीरे-धीरे भाषा-बोली और लोगों के व्यवहार और बातचीत से गायों के बारे में अच्छी-बुरी धारणाएं समझ में आने लगीं। कृष्ण और गायों के घनिष्ठ संबंधों का कई काव्य-कविताओं में उल्लेख है। कई पौराणिक कथाओं में खतरों में फंसी धरती माता गाय का रूप धारण करके विष्णु की शरण में जाती थी। दत्त (त्रिदेव) की प्रतिमा के पीछे भी एक गाय को हमेशा दिखाया जाता है। शिवालय के सामने भी नंदी बैठा हुआ दिखता है। इस तरह सारे देवता इन गाय-बैलों के रक्षक होने की वजह से, गाय मौन प्राणी होने के बावजूद, देवताओं के दरबार में उसका खासा पौआ चलता है; यह बात बचपन में ही मालूम हो गई थी। गोहत्या यदि महापाप है तो गोदान एक महापुण्य। गाय को गोग्रास (एक निवाला खाना) देना भी एक पुण्य है; लोगों की इस भावना का भरपूर फायदा लेने वाले लोगों को भी मैंने देखा है। कुछ चरवाहे गाय-ढोरों को सीधे ही जंगल में चरने के लिए ले जाते हैं। वहीं कुछ वृद्ध महिलाएं इकट्ठा किया हुआ चारा अपनी गायों को सीधे-सीधे खिलाने के बजाए चारे की छोटी-छोटी ढेरियां बनाकर अपने पास रखती हैं। उस

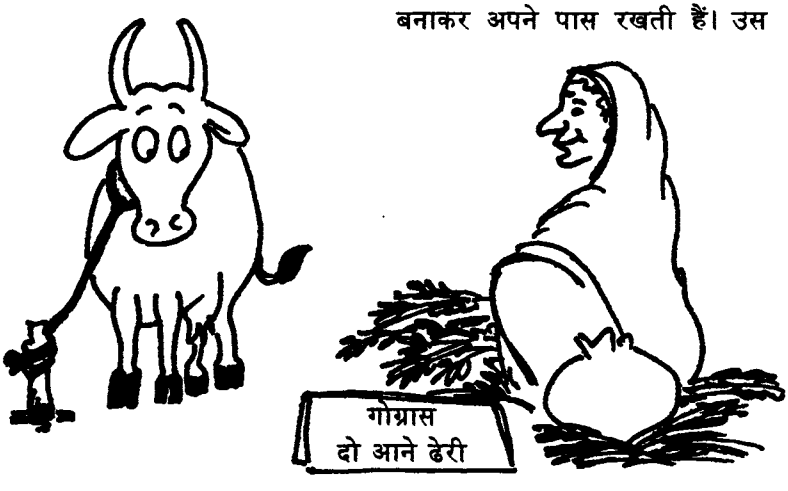

वृद्ध महिला से आस्थावान लोग पैसे देकर चारे की ढेरी खरीदकर गाय को खिलाते हैं। इस तरह लोगों को गाय को खिलाने का पुण्य मिलता है, वहीं गाय को चारा और वृद्धा को पैसा। लेकिन उस समय वास्तव में किसे क्या मिल रहा है या कौन ठगा जा रहा है, यह समझने की मेरी उम्र नहीं थी। लेकिन और भी मज़ेदार अवलोकन थे मेरे। रास्ते चलते यदि सामने गाय आ जाए तो मेरे साथ की कुछ लड़कियां गाय के पुट्ठे पर हाथ लगाकर फिर अपने गले पर लगाती थीं, तो कुछ लड़कियां बैठी हुई गाय की पूंछ को उठाकर अपने बालों से छुलाती थीं। पूछने पर पता चला कि गाय एक पवित्र प्राणी है इसलिए ऐसा करना चाहिए। इससे गाय की पवित्रता का कुछ हिस्सा हमें भी मिल जाता है।

गाय के बदन पर पिस्सू, गोमक्खी वगैरह हमेशा ही होते थे। यदि रास्ते पर बैठी गाय अपनी लंबी बैठक के बाद उठती तो उसके पुट्ठे पर चिपका सूखा गोबर भी दिखता था। हमारे घर में साफ-सफाई की जो बातें सिखाई जाती थीं उनके हिसाब से तो गाय को छूना भी संभव नहीं था। इसलिए बाकी लड़कियां जो करती हैं वैसा करने का मेरा मन कभी भी नहीं हुआ। लेकिन साथ की लड़कियां जो करती उसके बारे में घर पर मां को बताने पर मां एक खासा प्रवचन दे देती थी; जिसमें अपने धर्म में गाय का स्थान, प्राचीन भारत में खेती के लिए उसकी उपयोगिता, मौजूदा दौर में उसकी दयनीय हालत, रास्ते में बैठी गाय की वजह से यातायात में होने वाला अवरोध, गाय-बैलों को सलीके से न पालकर उन्हें सड़कों पर छोड़ देने वाले लापरवाह मालिक, गोदान वगैरह जैसी बातों के झांसे में फंसा हमारा समाज आदि, आदि कई बातों की समझाइश मुझे दी जाती थी। और इस सबके बाद किसी तरह का शक-शुबह न हो इसलिए मुझे हाथ धोने के लिए फिर एक बार भेजा जाता था।

एक ओर हिन्दूधर्म में बताई गई गाय की पवित्रता समझ में आती थी, छत्रपति शिवाजी द्वारा गाय और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए स्थापित स्वराज दरअसल किन कारणों से स्थापित हो सका, वो भी समझ में आने लगा था। दूसरी ओर 20वीं सदी में बांद्रा में मौसी के घर रहते हुए एकदम जर-जर गायों को, जिनके शरीर पर तांबई निशान बने होते थे, कसाईखाने की ओर ले जाते हुए भी हम देखा करते थे। कसाईखाने की ओर सिर झुकाए जाती हुई गायों को देखकर मुझे उन गायों पर बेहद दया आती थी और उन गायों की ज़िंदगी बचा पाने में अपने अक्षम होने का दुख भी होता था।

इसके अलावा हमारे आसपास

अलग-अलग तौर-तरीकों वाले लोग रहते हैं जिनमें से कई सारे गाय का मांस स्वाद के साथ खाते हैं, यह भी मैं जानती थी। मुझे मांस खाने में कोई रुचि नहीं थी इसलिए मांस खाने के मामले में मेरा उनसे एकमत होना मुश्किल था। इस तरह गाय के बारे में हमारे समाज के परस्पर विरोधी संदर्भों को देखते हुए मैं बड़ी हुई थी।

लड़की से युवती होते हुए मैंने हमारे समाज में गाय और औरत के साम्य के बारे में काफी कुछ देखा। 'गैया-मैया एक जैसी' या 'गोशाला में गैया वैसे घर में मैया' जैसे मुहावरे कानों पर आए। औरत जात को गाय की तरह ममतामयी और सहनशील होना चाहिए, ऐसी समाज की औरत से अपेक्षा है यह समझ में आया। अपने सींग तोड़कर बछड़ों की जमात में शामिल होने वाली गायों के बारे में भी मुहावरे थे, लेकिन किसी के परेशान किए जाने पर अपने सींगों का इस्तेमाल कर सबक सिखाने जैसे कारनामे गायों के हिस्से में हमारे समाज ने कभी भी नहीं दिए; ये सब कारनामे फूहड़ समझी जाने वाली भैंसों के हिस्से में गए। यदि किसी झगड़ालू महिला की किसी से तुलना करनी हो तो वो भैंस से की जाती है – झगड़ालू भैंस कहकर। लेकिन 'गरीब गाय' हमेशा अपनी सज्जनता की लक्ष्मण रेखा में ही रहती आई है।

उन्हीं दिनों कभी 'संगीत शारदा' नाटक पढ़ने और देखने का मौका मिला था। इस नाटक में धन के लालच में एक बाप अपनी बेटी की शादी एक बूढ़े-खूसट से करने की योजना बनाता है। इस योजना के बारे में पता चलने पर लड़की शारदा कहती है – 'हम गाय की जात, नहीं जुबां पर बात'। शारदा जो कहती है वह सुनकर मुझे अचरज हुआ कि क्या कोई लड़की सचमुच ऐसी हो सकती है! मुझे तो यह कभी सच नहीं लगता था क्योंकि मैं काफी खुले पारिवारिक माहौल में पली और बड़ी हुई थी। कसाई को गाय बेचने की तरह पैसों की खातिर अपनी बेटी को किसी बूढ़े को बेचने जैसी बात हज़म कर पाना मेरे लिए खासा कठिन था। लेकिन नाटक में शारदा की मां इंदिरा अपने पति से सवाल पूछती है, "रस्सी बांधकर लड़की को

बेचना, गोशाला में बंधे जानवर को बेचने जैसी बात नहीं है क्या?" ऐसा तीखा सवाल पूछने वाली इंदिरा को मैं अपने काफी करीब पाती थी।

धीरे-धीरे अखबार वगैरह ध्यान से पढ़ने पर समझ में आने लगा कि शारदा नाटक कितना भी पुराना हो जाने के बाद भी प्रासंगिक रहेगा। आगे भी ऐसे कई सारे वाकयातों से समझ में आया कि बाप से डरने वाली लड़कियां और 'हम गाय की जात', ऐसे वर्णन के योग्य औरतें हमारे समाज में अक्सर दिखाई देती हैं।

60 के दशक के आखिर में भारत छोड़कर अमरीका आने पर गाय के बारे में मेरी धारणाओं में और नई बातें जुड़ीं। मराठी में गाय से संबंधित प्रचलित विविध कहावतों को यहां अमरीका-कनाडा में एकदम भिन्न अर्थ और संदर्भ में मुझे समझना पड़ा था।

कनाडा में पढ़ाते हुए

पिछले 10-12 सालों में मैं बीच-बीच में ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी में अलग-अलग कक्षाओं को हिन्दी पढ़ाती रही हूं। वैसे गरीब गाय से या हट्टे-कट्टे सांड-बैलों से मेरे विद्यार्थियों का कोई सीधा संबंध नहीं है। लेकिन फिर भी इससे संबंधित निबंध लिखने का होमवर्क मैंने उन्हें हाल ही में दिया था। मेरी कक्षा में काफी सारे विद्यार्थी इंडो-केनेडियन यानी पंजाबी, गुजराती, बंगाली परिवारों से, कुछ सिंहली, कुछ फिजी से आए हुए और इनके अलावा कुछ गोरे केनेडियन भी हैं। यूनिवर्सिटी की माली हालत ठीक न होने की वजह से ये सब अलग-अलग स्तर के विद्यार्थी एक ही कक्षा में प्राथमिक हिन्दी सीखने आ रहे थे। घरों में हिन्दी फिल्में देखकर और मातृ भाषा पंजाबी होने की वजह से कुछ विद्यार्थियों का शब्द भंडार थोड़ा बेहतर था। शेष गोरे या अश्वेतों को मैं क्लास में सीखाती, उतनी ही हिन्दी उन्हें आती थी और वे व्याकरण की सीढ़ी पर चढ़ते हुए शब्दकोशों के सहारे किसी तरह भाषा सीख रहे थे।

पहले साल की दूसरी छिमाही में मैं कभी-कभी एकदम साधारण चित्र को देखकर वर्णन लिखने के लिए कहती। यदि चित्र को देखकर किसी का कहानी लिखने का मन हो तो वो भी लिख सकते हैं, यह भी मैं बता देती थी। इस लेखन के दौरान शब्द खोजने, वाक्य बनाने में मैं उनकी मदद करती हूं। चित्र वर्णन वाला अभ्यास कई बार काफी मज़ेदार होता है। विद्यार्थी जो लिखते हैं वो मुझे तो मज़ेदार लगता ही है लेकिन मैं उन्हें उसे कक्षा में पढ़कर सुनाने के लिए भी कहती हूं। पढ़कर सुनाने से बाकी विद्यार्थियों को भी नए शब्द, लोकोक्ति आदि हंसते-हंसते पता चल जाते और मज़ा भी

आता था। बाद में मैं हर साल चुने हुए निबंधों का एक संकलन विद्यार्थियों के लिए सीमित संख्या में प्रकाशित करती हूं। इस संकलन को विद्यार्थी बेहद रुचि के साथ अपने पास सम्हाल कर रखते हैं। इस बार मैंने जो चित्र दिया, वो कुछ इस तरह था:

एक बरगद के पेड़ के नीचे दो ढोर आराम फरमा रहे हैं। संभवतः बैल, लेकिन वे गाय या बैल कुछ भी हो सकते हैं। उन दोनों में से एक की पीठ हमारी ओर है और उसका मुंह नहीं दिख रहा। दूसरे का मुंह हमारी ओर है और उसकी पीठ पर एक कौआ बैठा हुआ है। विद्यार्थियों को इन ढोरों को गाय या बैल में से कुछ भी कहने की छूट दी गई थी और सिर्फ एक पेज का वर्णन लिखना था। उनके लिखे को जांचते समय मुझे 'जितने लोग उतने ही मिजाज़', इस उक्ति का अहसास हुआ। कुछ छात्रों ने अपने सीमित शब्दकोश का इस्तेमाल करते हुए सिर्फ चित्र का सरल ब्यौरा दिया था। पहले साल के विद्यार्थियों के हिसाब से उतना भी पर्याप्त था। लेकिन कुछ विद्यार्थियों ने अपनी कल्पनाओं के घोड़ों को खूब

चित्रांकन: विद्युल्लेखा अकलूजकर

दौड़ाया था। आगे हम छात्रों के लेखन के कुछ नमूनों पर चर्चा करेंगे।

तीन दोस्तों की कहानी

विशाल शर्मा ने जो लिखा वह कुछ इस तरह था: *दो बैल और एक कौवा ये तीनों दोस्त थे। काफी काम करने के बाद बैल थककर पेड़ के नीचे बैठ गए। कौवा भी आया और बैल की पीठ पर बैठ गया।*

बड़ा बैल, "उफ, आज तो काफी थक गए।"

छोटा बैल, "सच भैया, आज कितना काम करना पड़ा। क्या किया जाए?"

बड़ा बैल, "मैं सोचता हूं, तुम लोग भी विचार करो।"

फिर काफी सोच-विचार के बाद बड़े बैल को कुछ सूझा।

कौवा और छोटा बैल चिल्लाने लगे, "बताओ, बताओ।"

"खामोश रहो, बताता हूं।" बड़ा बैल बोला, "कल मालिक उठने से पहले हम यहां से भाग खड़े होंगे।"

"हां वह सब तो ठीक है लेकिन भागकर जाएंगे कहां?" उन दोनों ने पूछा।

बड़ा बैल बोला, "मुझे लगता है बंबई जाना चाहिए। सुना है वहां ऐश्वर्या राय रहती है। लेकिन श श..... चुप।"

विशाल के ये बॉलीवुड की फिल्मी दुनिया में रमने के इच्छुक बैल सारी क्लास को हंसा गए। अगला निबंध निशी भोपाल ने पढ़ा। उसका निबंध था तो छोटा-सा लेकिन उसने एक फर्क भौगोलिक संदर्भ दिया था।

भागकर जाने वाले बैल और कौवा

ये दोनों बैल अर्जेंटाइना के हैं। वे काफी थकने के बाद बरगद के पेड़ के नीचे बैठे हैं। थके हुए इसलिए हैं क्योंकि वे मेकडोनाल्ड्स की फेक्ट्री से काफी दूर भागकर आए हैं। उनको 'बिग मैक' से सबसे ज़्यादा डर लगता है। कौवा भागने में उनकी मदद करने वाला 'स्नेक हेड' है। बैल भारत की ओर जाने वाले हैं। उनको भारत पसंद है क्योंकि भारत में सब लोग उनकी पूजा करते हैं, कोई गाय-बैल नहीं खाता। बैल बंबई जाकर बॉलीवुड में फिल्म स्टार बनने के सपने देखते हुए आराम कर रहे हैं।

बॉलीवुड की फिल्मी दुनिया का यहां के इंडो-केनेडियन लड़के-लड़कियों में कितना आकर्षण है यह तो हमने इन दो निबंधों में देखा ही है। भागकर जाने की योजना बनाने वाले विशाल के बैलों से भी आगे निकल जाते हैं निशी के बैल।

निशी के बैल वास्तविकता के करीब हैं। वे त्रासद परिस्थितियों से भागकर जाते हुए थके हैं। चीन तथा कुछ अन्य

पूर्वी देशों से, स्मगलर्स को कुछ ले-देकर कुछ लोग अवैध रास्तों से कनाडा के पश्चिमी तट पर जहाज़ से उतरने की कोशिश करते हैं, और एक बेहतर ज़िंदगी की खोज में बीच के दलालों 'स्नेक हेड्स' को काफी पैसा ताउम्र देते रहते हैं; ऐसी खबरें यहां अक्सर सुनाई देती हैं। कनाडा की इस हकीक़त की, मेकडोनाल्ड्स कंपनी में हैम्बर्गर के लिए चल रही गोहत्या की और भारत की सुनी-सुनाई गो-पूजा की बातें .....। कुल मिलाकर इस छात्रा ने अपने इस छोटे से निबंध में, इन सबको पिरो दिया था। साथ ही निशी की समाज शास्त्र व अर्थशास्त्र की पढ़ाई भी इस निबंध में झलक रही थी जिसकी वजह से चित्र के पशु भी एकदम फर्क लग रहे थे।

मनोविज्ञान का विद्यार्थी गैरी (गौरव आर्य) क्लास में काफी खामोश बैठता है। अपने कथानक में उसने बैलों का मनोविश्लेषण करने की कोशिश की थी।

बैल और उसका कौवा

इस चित्र में बरगद के नीचे बैठे हुए दो बैलों में से पीछे वाला बैल दुखी है, क्योंकि साथ वाले बैल की पीठ पर बैठे कौवे को देखकर उसे अपने कौवे की याद आ रही है।

कल तक उसके पास भी कौवा था लेकिन पिछली रात वो उड़ गया और वापस ही नहीं आया। इसलिए पीछे वाले बैल को अकेलापन महसूस हो रहा है।

थोड़ी देर में रात हो जाएगी और यह कौवा भी उड़ जाएगा और आगे वाला बैल भी अकेला हो जाएगा। फिर दोनों बैल आपस में बातचीत करेंगे और खुशी-खुशी रहेंगे।

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्।" इस सुवाक्य की याद मुझे इस निबंध को पढ़कर हुई। कमल की पंखुड़ियों में कैद एक भंवरा यह सोचता है कि अब रात खत्म होगी, फिर सूरज निकलेगा, कमल खिलेगा और मैं भी इस कमल से बाहर निकल सकूंगा। वैसे ही गैरी का उदास बैल भी भविष्य की ओर आंखें लगाकर अभी की कठिन परिस्थितियों को सहने की कोशिश कर रहा है। मुंह पीछे की ओर छुपाकर बैठे बैल के अकेलेपन के बारे में कल्पना कर पाना भी अपने आप में एक अहम बात है।

दोस्ती, साथ आदि की ज़िंदगी में अहमियत और अकेलापन, ईर्ष्या इन सब पर 'समय' ही एक मात्र उपाय है, यह थोड़ी अलग किस्म की सोच गैरी के निबंध में दिखाई देती है। कक्षा में गैरी की खामोशी में चिंतन का पुट भी है, यह मुझे दिखाई दिया।

गैरी के पास बैठने वाले पवित पॉल ने अपने निबंध में मनोविज्ञान

और राजनीतिक कुटिलता इनको साथ-साथ दिखाया था। उसने जो पढ़ा, वह कुछ इस प्रकार है:

गाय, बैल, कौवे की कहानी

बरगद के पेड़ के नीचे गाय छाया में सो रही थी। वहां एक कौवा आया। उसे भी छाया में सोना था। लेकिन वो गाय को अपनी ताकत के दम पर वहां से भगा नहीं सकता था। बैल और गाय साथ-साथ रहते थे। इसलिए वो गाय के साथ रहने वाले बैल के पास गया और बैल की पीठ पर बैठते हुए बोला, "गाय मुझसे कह रही थी कि मैं एक बेवकूफ बैल के साथ रह रही हूं।" यह सुनकर बैल को गुस्सा आया और उसने गाय को वहां से भगा दिया।

उसके बाद सिर्फ बैल और कौवा ही छाया में सोते थे लेकिन उस बरगद के पेड़ को वे दोनों पसंद नहीं थे, इसलिए एक दिन बरगद का पेड़ उन दोनों के ऊपर गिर पड़ा जिससे वे दोनों दबकर मारे गए।

लेकिन बरगद का पेड़ भी बेवकूफी कर गया। अब उसने फिर से उठने की काफी कोशिश की, लेकिन वह दोबारा उठकर खड़ा न हो सका।

हरेक छात्र के निबंध में चित्र में दिखाए जानवरों के स्वभाव बदलते जा रहे थे। पवित पॉल की कहानी में तो पेड़ को भी एक इंसानी शख्सियत की तरह पेश किया गया था। इस कहानी में कौवा बेहद स्वार्थी था, और बैल कान का कच्चा व बेवकूफ। कहानी में संक्षेप में नाटकीयता कैसे लाना है यह भी पवित पॉल को मालूम था। 'द रेमेडी इज़ वर्स देन द डिसीज़' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए पेड़ की जल्दबाज़ी भी इस कहानी के अंतिम हिस्से में थी। जब उसने कहानी पढ़कर सुनाई तो पूरी क्लास हंस पड़ी। एक छात्र ने सवाल भी किया कि "इस कहानी से क्या सार निकला?" पवित ने कहा, "कुछ नहीं, बेवकूफ मत बनो।" कहानी का सार जानने के बाद मुझे यह कहानी पंचतंत्र में रखने के लिए उपयुक्त लगी।

गाय के बारे में धार्मिक परम्पराओं का ज़िक्र सिर्फ एक लड़की ने किया था। शोभा का लिखा इस तरह था:

सहारनपुर गांव में कृष्ण जन्माष्टमी के उत्सव की तैयारी चल रही थी। यहां कार्यक्रम में गायों को काफी महत्व दिया जाता था क्योंकि कृष्ण ने कई साल पहले गायों की पूजा की शुरुआत की थी। लोग मंदिर में जाकर कृष्ण की पूजा करते हैं फिर गायों को सजा-संवारकर उनका जुलूस निकालते हैं। उत्सव की ये तैयारियां चल रही थीं, तभी ज़ोरदार आंधी-तूफान आ गया। इस तूफान से डरकर मंदिर की दो गायें भागकर एक बरगद के पेड़ के नीचे रुक गई हैं। आंधी-तूफान थमने

के बाद लोग मंदिर से बाहर निकलकर आए और सजाने के लिए गायें खोजने लगे। लेकिन गायें नहीं मिल रही थीं। फिर आसमान से गायों का दोस्त कौवा नीचे उतरा और उसने बरगद के नीचे रुकी गायों को खोज निकाला।

वैसे यह निबंध एकदम सीधा-सीधा था। कनाडा में पलने-बढ़ने के बाद भी लड़की को उत्सव की इतनी जानकारी होने का कारण था – 'हरे कृष्ण संप्रदाय' हर साल यहां के मंदिर में भारतीय तौर-तरीकों से जन्माष्टमी का त्यौहार मनाता था, और इस उत्सव में उसके घर के लोग शिरकत करते थे।

इस तरह अलग-अलग निबंधों में चित्र में दिखाए गाय-बैल अलग-अलग किरदारों में सामने आ रहे थे। और हरेक का निबंध सुनते हुए मुझे छात्रों की क्लास के बाहर की ज़िंदगी का अंदाज़ा लग रहा था।

गेब्रियल कोहन नाम का एक गोरा यहूदी लड़का भी मेरी हिन्दी की कक्षा में है। वो संस्कृत और भारतीय मिथक, इन दो कक्षाओं में भी था। उसने अनुवादों के ज़रिए वैदिक और पौराणिक मिथकों को पढ़ा था और मज़हब के इतिहास को जानने की वजह से हिंसा, क्रोध, शोक आदि से वह वाकिफ था। उसने जो लिखा वह इस तरह था।

बरगद के पेड़ के नीचे

बरगद के पेड़ के नीचे एक अंधी गाय रहती थी। एक बदसूरत कौवा आकर उसकी पीठ पर बैठा। गाय ने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

कौवा बोला, "मैं राजा का सुंदर मोर हूं। मुझे दाल-चावल दो।"

"मेरे पास दाल-चावल नहीं हैं।" गाय ने कहा।

भूख से परेशान कौवे ने कहा, "तो फिर मुझे आम दो, केले दो।"

गाय ने कहा, "मेरे पास ये भी नहीं हैं, सिर्फ दूध है।"

तब कौवे ने कहा, "तो फिर तुम अपनी आंखों की स्वादिष्ट पुतलियां मुझे खाने दो। वैसे भी तुम अंधी हो इसलिए तुम्हारे ये किसी काम की नहीं हैं।"

गाय ने कहा, "ठीक है।"

कौवे ने गाय की आंखों की पुतलियां खाईं और मरकर गिर गया, क्योंकि गाय की आंखें कांच की थीं।

जब गेब ने उसका निबंध पढ़कर सुनाया तो पूरी कक्षा को सांप सूंघ गया। पहली बार एक मनोरंजक लगने वाली कहानी का अंत इतना सनसनीखेज था। छह महीने पहले इस लड़के को हिन्दी के अक्षरों की ठीक से पहचान भी नहीं थी। लेकिन गेब के निबंध में संक्षेप में दुनिया में अंधत्व, ठगी, हिंसा और आखिर में इंसाफ, इन सबको प्रस्तुत किया गया था। यह सब देखकर मैं चकित हो गई। इससे आगे भी जब गेब द्वारा अद्वितीय कहानियां या उपन्यास लिखे जाएंगे तब मुझे उसके

इस हिन्दी निबंध की याद आती रहेगी।

कुछ लड़कियों ने साधारण, घरेलू मामलातों पर भी निबंध लिखे थे। प्रीतिका ने चित्र से एक प्रेमकथा बनाई थी। उसकी शब्द संपदा थोड़ी सीमित ही थी। उसकी कहानी में सिर्फ एक बैल और एक कौवा था। उसकी कहानी इस प्रकार थी:

राम और उमा

एक सुंदर बैल था, उसका नाम राम था। वो रोज़ पेड़ के नीचे आता था। एक काली कौवी थी, उसका नाम उमा था। वो भी रोज़ पेड़ के नीचे आती थी।

राम को नहीं मालूम था कि उमा उससे प्यार करती है।

सोमवार की शाम को उमा ने राम को बताया कि मैं तुमसे प्यार करती हूं। राम बेहद खुश हुआ।

लेकिन मैं कदकाठी में काफी बड़ा हूं और उमा काफी छोटी। फिर यह मेल किस तरह से हो? ऐसी राम के मन में शंका थी।

उमा ने कहा, "चिंता मत करो, मैं बावजूद इस सबके तुमसे ही प्यार करती हूं।"

फिर राम और उमा ने शादी कर ली।

इंटरकास्ट या मिश्रित विवाह की यह प्रेमकथा सुनकर कुछ ख्वाबों की सैर करने वाली लड़कियों के चेहरे खिल गए और उनकी आंखों में और भी सपने तैरने लगे थे। लेकिन कुछ यथार्थवादी, व्यावहारिक छात्र हंसने लगे और प्रीतिका ने भी कंधे उचकाए।

इसके बाद मैंने कमील से उसका निबंध सुनाने के लिए कहा। कमील फिजी से यहां आई है। बरसों पहले फिजी में उत्तर प्रदेश के हिन्दी बोलने वाले काफी लोग बस गए थे। उन लोगों ने अंग्रेज़ी को अपना लिया है। उनके रहन-सहन व दिखावे पर फैशन का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। परन्तु यहां कनाडा में रहते हुए भी उनकी निजी ज़िंदगी में ज़्यादा फर्क नहीं दिखाई देता। कमील वैसे शर्मिली लड़की है, क्लास में अपनी बात खुलकर कहने में उसे काफी समय लग जाता है। लेकिन उसका निबंध कुछ इस तरह से था।

गाय, बैल और कौवा

बरगद के पेड़ के नीचे तीन प्राणी बैठे थे – गाय, बैल और कौवा। गाय और बैल ये पति-पत्नी हैं और कौवा बैल की सफाई करता है।

बैल खुद से होकर कभी नहाता नहीं। वो गैर ज़िम्मेवार है। वो शराब पीता है। पहले ही उसने काफी रुपए गंवाए है इसलिए अब वो शराब पीता रहता है।

गाय थक गई है। आठों पहर उसे घर की साफ-सफाई करनी पड़ती है। इसलिए अब वो थकान से चूर होकर

सो रही है। सचमुच उसके लिए शादी एक सज़ा जैसी ही है। पहले-पहले रोज़ दोपहर गाय और बैल काफी दूर तक घूमने जाते थे। लेकिन अब बैल अलाल हो गया है और गाय उदास-उदास सी।

आजकल गाय कौवे के साथ उड़ जाने के सपने देखती रहती है।

प्रीतिका के निबंध के बाद जब यह निबंध पढ़ा गया तो कक्षा को इस चित्र में एक अलग दुनिया दिखाई देने लगी थी। बैल और कौवे के मिश्र विवाह पर हंसने वाले छात्र इस निबंध को सुनते हुए खासे विचारशील बन गए थे; क्योंकि प्रीतिका की कहानी की तरह ही कमील की कहानी भी शादी पर फोकस होने के बावजूद, इसमें सिर्फ कोरी कल्पनाशीलता नहीं थी बल्कि एक हकीकत से भी जुड़ाव दिख रहा था।

पहली बार जब कमील मेरे पास शब्दों के सुधार हेतु आई थी तब मैंने उससे पूछा था कि ये वाक्य तुम्हें किसने बताए? उसने बताया कि उसने कई दफा सुने हैं, रिश्तेदारों की आपसी बातचीत के दौरान वगैरह। मुझे यह जानकर थोड़ा दुख हुआ लेकिन क्या किया जाए? यह एक सच्चाई थी जिसे स्वीकार करना ही होगा। मुझे 'शारदा' नाटक की एक बार फिर याद आई – 'हम गाय की जात' कहने वाली आज भी यहां कम नहीं हैं, यह समझ में आने लगा था।

लेकिन पूरे दिन की मेहनत को सार्थक करने वाला निबंध पढ़ा था

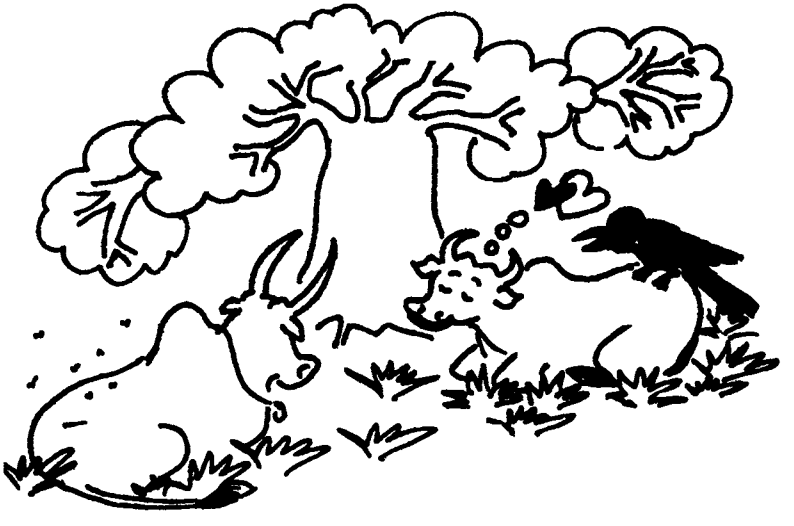

बरिंदर कौर ने। बरिंदर मेरी क्लास की एक हंसमुख लड़की है। उसका निबंध पढ़ते हुए मुझे रह-रहकर हंसी आ रही थी। बाकी सबके निबंध से उसका निबंध काफी फर्क किस्म का था क्योंकि उसने निबंध गाय की जुबान में लिखा था। उसका निबंध सुनकर पूरी कक्षा ने खुलकर तालियां बजाकर उसे प्रोत्साहित किया। यहां कहानी में उस ज़िंदगी का अक्स साफतौर पर देखा जा सकता था जो यहां के इंडो-केनेडियन छात्रों, खासकर पंजाबी लड़कियों को मालूम था। लेकिन बरिंदर की किन्हीं भी हालातों में रास्ता तलाशने की आदत और हास्य प्रधान सोच भी इसमें आसानी से देखी जा सकती थी।

मैं एक गाय हूं

मेरा नाम गीता है और मैं एक गाय हूं। आज मेरा पांचवां जन्मदिन है और मेरी शादी भी आज हो रही है। मुझे शादी से बहुत डर लगता है। मेरी मां कहती है कि शादी के बाद गाय जल्दी बूढ़ी हो जाती है।

मेरे कमरे से मेरे होने वाले पति दिखाई दे रहे हैं। वे बरगद के नीचे बैठे हैं। उनके गले में सोने का हार है और उनकी कमर पर उनका पालतू कौवा बैठा हुआ है। मां कहती है कि जिन बैलों के पास कौवा होता है वे अच्छे होते हैं। दूर से मेरे होने वाले पति बहुत सुंदर दिख रहे हैं, पर दूर से तो हर चीज़ अच्छी लगती है। चाहे मां कुछ भी कहे मुझे वे बैल पसंद नहीं जिनके पास कौवे होते हैं।

आदमी को तो शादी करनी पड़ती है पर गाय बैल को नहीं। मुझे शादी नहीं करनी। न इस बैल से जिसके पास कौवा है, और न उस बैल से जिसकी कमर मेरी तरफ है।

मैं एक गाय हूं। यह मेरा जीवन है। मैं सिर्फ दूध देने के लिए और बच्चे पैदा करने के लिए नहीं बनाई गई। अब घास चरने जा रही हूं।

बरिंदर के निबंध की आधुनिक 'शारदा' क्लास में सभी को पसंद आई। मुझे भी प्रशंसनीय लगा कि 'हम गाय की जात' कहने के बावजूद गाय के संदर्भ में सहनशील, बंधन में आसानी से बंधने वाली, जैसा चाहा वैसा घुमाया..... वगैरह परम्परागत मापदंडों को उसने दरकिनार कर दिया था। यहां के खुले समाज में, तमाम आज़ादियों के बावजूद यहां के कई पंजाबी परिवार की लडकियों को मां-बाप तय करेंगे उसी के साथ शादी करनी पड़ती है। लेकिन यहां भी हालात थोड़े बदल रहे हैं। खुद को मौन प्राणी न मानते हुए, अपनी भी जुबान है और इस जुबान का इस्तेमाल करने की बुद्धि भी मिली है, ऐसा आजकल इधर की लड़कियां महसूस करने लगी

हैं। इस किस्म की सुधारवादी बयार बरिदर की गाय के कान के पास से भी गुज़री हुई लगती है। अपनी मां की सोच से सहमत न होने वाली, खुद के दिल की बात को ध्यान से सुनने वाली यह गाय बाहर चरने के लिए निकलने वाली थी। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचल में दूध और आंखों में पानी।' इन आदर्शों पर कान न देने वाली यह गाय ही सचमुच कामधेनु है। इस गाय ने खुद से शुरू करते हुए सामाजिक सुधारों का बिगुल बजा दिया है। इस निबंध की वजह से मुझे तो बेहद खुशी हुई लेकिन देवल, फुले, आगरकर, कर्वे जैसे औरतों के असली पक्षधरों को भी खुशी हुई होती ऐसा मुझे रह-रहकर महसूस होता रहा।

विद्युल्लेखा अकलूजकर: पिछले कुछ वर्षों से कनाडा के ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय में, वहां के विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाती हैं।

चित्रांकन: सुजाता जोशी: पुणे से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'मिळून सार्याजणी' से जुड़ाव।

यह लेख पुणे से प्रकाशित होने वाली मराठी पत्रिका 'मिळून सार्याजणी' के अप्रैल 2001 के अंक से लिया गया है। मिळून सार्याजणी पत्रिका में औरतों की ज़िंदगी पर फोकस करने वाले मुद्दों के साथ-साथ विविध सामाजिक विषयों पर लेख होते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर।